International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

बस्तर के आदिवासी संघर्ष का यथार्थ संदर्भः राजीव रंजन प्रसाद कृत उपन्यास 'आमचो बस्तर'

डॉ. रमेश कुमार

हिन्दी प्रवक्ता, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, बेरला, चखी दादरी, हरियाणा

वर्तमान युग की संचार क्रांति ने पूरे विश्व को एक गांव के रूप में बदल दिया है। हर रोज नए-नए परिवर्तन हो रहे हैं जिनका जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। जीवन शैली दृष्टिकोण, चिंतन, संस्कृति में तेजी से बदलाव आया है। अप्रत्यक्ष रूप से यह नवीन जागृति का दौर है, व्यक्तिवादिता का दौर है। तेजी से बदलते समय में कुछ मानव समूह ऐसे है जो इन परिवर्तनों से दूर पहाड़ों, जंगलों में प्राचीन ढंग समय भी से रह रहे हैं। परिवर्तनों की, विकास की बयार उन तक वहीं पहुँच सकी है। यदि पहुँची है तो विनाश की नींव बनाकर यह समूह है आदिवासी जन का।

भारत में वर्तमान काल में सबसे पिछड़ा जन समूह आदिवासी जन समूह है। जो मुख्य धारा से दूर पहाड़ांे जंगली, द्विपों पर सदियों से अपनी तरह से रहता आ रहा है। संविधान में इनके लिए "जनजाति" शब्द का प्रयोग किया गया। इनको गिरिजन, वनवासी, जंगली भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति कोश के अनुसार 'आर्य एवं द्रविड भारत के इन दो मानव समाजों को छोड़कर उनसे भी पूर्व भारत में रहने वाले, भारत या अन्य देश से आकर वन, पर्वत, के आश्राम में निवासित।'1

अर्थात भारत-भूमि पर निवास करने वाला प्राचीनतम जन समूह। बदलते समय और बदलते हालात के चलते आदिवासियों का जीवन भी प्रभावित हुआ है। बाहरी समाज के सम्पर्क से उनमें जागृति आई है। उन्हें उनके वर्तमान और भविष्य की चिंता होने लगी है। अपने शोषण, पीडा, अत्याचारों के विरुद्ध उनमें चेतना आने लगी है।

वर्तमान सदी के हिन्दी साहित्य में भी आदिवासी जीवन-संघर्ष को सजीवता से चित्रित किया जा रहा है। आदिवासी साहित्यकारों के अतिरिक्त गैर-आदिवासी साहित्यकारों का भी इस में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

राजीव रंजन प्रसाद कृत 'आमचो बस्तर' उपन्यास भी बस्तर के आदिवासियों के जीवन की संघर्ष गाथा है। श्री राजीव जी अपने उपन्यास- 'आमचो बस्तर' में बस्तर क्षेत्र के आदिवासियों के इतिहास, पुरातत्व, लोक-संस्कृति को तो साक्ष्यों सहित सम्पुष्ट प्रस्तुत करते है। ''इस क्षेत्र की आधुनिक समस्याओं को भी उसी सहजता से उठाते हैं। बस्तर के इतिहास के ग्यारह विद्रोहों के अलावा दो पीढ़ियों के मन-मस्तिष्क में उफनते रहे हैं, उन्हे विभिन्न पात्रों के माध्यम से भी बस्तर के उथल-पुथल भरे यथार्थ का वर्णन किया गया है। शासन-प्रशासन के खलनायकों ने कैसे बस्तर के बनवासी जीवन में विष घोला।''2

सŸाा द्वारा बस्तर के आदिवासियों का लगातार शोषण होता रहा है। सŸाा द्वारा केवल अपने लाभ के लिए, स्वार्थ के लिए आदिवासियों का मन मानिक दोहन किया जाता रहा है। यही कारण है कि बस्तर के आदिवासियों का जीवन कठिन से कठिनतर होता रहा है

उपन्यासकर यही सवाल करते हैं- ”आखिर सुबह क्यों नहीं होती? वाकटक, नल, गंग, चालुक्य, सोमवंशी, नाग, काकतीय, मराठे, अंग्रेज और आजाद भारत की सरकार ..... बस्तर की माटी के शासक कितने ही रहे, फिर भी भूखा, नंगा, पिछड़ा और निरीह? अजब अजायबघर बना दिया गया है? यहाँ लोहा है, कोरडम है, टिन है, बॉक्साइट है, लाइम स्टोन है, यूरेनियम है, हीरा है ..... इतनी मूल्यवान माटी और माटी का मोल?“3

आजादी के बाद भी आदिवासी उसी तरह के शोषण व उनकी सम्पदा के दोहन के नये-नये तरीके इजाद किए जा रहे है। वास्तव में अंग्रेजों की तरह ही भारत सरकार भी वही शोषणवादी हथकण्डे अपनाए हुए हैं। ‘‘कितनी जल्दी अंग्रेजों की राजनीति से हिन्दूस्तान ने सबक ले लिया था, आजाद भारत की नियति को फिर भेडियों और गिद्धों ने लिखना आरम्भ कर दिया, क्या इस से बड़ा दुर्भाग्य हो सकता था? काश !! राजनीति को नयी मुख्य धारा यह समझती कि अनेक संस्कृतियों से समृद्ध देश की जड़ को पानी चाहिए न कि पत्तियों को दवा का छिड़काव।’’4

भोले, सीधे-सरल आदिवासियों को शासन-प्रशासन द्वारा बेरहमी से लूटा जा रहा है। एक अदना-सा कर्मचारी आदिवासियों के जीवन का निर्णय करता है। आदिवासी चुपचाप उस अन्यायपूर्ण, क्रूर निर्णयों को स्वीकार करने को मजबूर हैं। वास्तव में सरकार की नीतियाँ ही इस तरह बनाई जाती है जिस से उनकी जमीन, जंगल और जल को हड़पना आसान हो सके। सरकार का तर्क रहता है कि उनका देश के विकास के लिए उपयोग किया जा सके। लेकिन उनके विकास की किसी को चिंता नहीं है। ‘‘आदिवासी को खेती करने के पारम्परिक तरीके से रोका गया। उसे आदेश निरन्तर परेशानी की हालत में रहता है। यदि वह कहीं और रहता है तो उस पर लगभग प्रत्येक प्रकार के वन उत्पादों के लिए लाइसेंस प्राप्त करने के लिए, दबाव डाला जाता है। प्रत्येक मोड पर वन कानून उनकी जिन्दगी में आड़े आते है। वर्ष 1934 के दौरान मध्य प्रांत एवं बरार में 27000 (सत्ताइस हजार) वन अपराध दर्ज हुए। यह स्वाभाविक है कि इतनी बड़ी संख्या में अपराध नहीं हो सकते जब तक कि वन-नियम जनजातीय लोगों की आधार भूत आवश्यकताओं और भावनाओं के आड़े नही आते जाते।’’5

लगातार शोषण का शिकार होते आदिवासियों के सामने अपनी आस्मिता और अस्तित्व का सवाल खड़ा हो गया है। उपन्यासकार स्पष्ट करता है कि विपरीत हालात में कठिन जीवन यापन कर रहे अहिंसक आदिवासियों के लिए कोई रास्ता नहीं बचता। तब वे कुछ भी कर गुजरने के लिए तैयार हो जाते हैं। लोकतन्त्र में भी आदिवासियों के राजा को हटाकर, सरकार अपनी मर्जी का शासक उन पर नियुक्त करें। यह उनको स्वीकार नहीं है। ‘‘आदिवासी और अबुझ समझा जाने वाला जन समूह प्रशासन को चुनौती दे रहा है कि हमारे कौन तुम? जंगल हमारा, जमीन हमारी, पानी हमारा पंछी हमारे, राजा भी हमारा ही होगा। अगर आजादी है तो हम भी आजाद हैं। अगर लोक तन्त्र है तो राजा भी हमारा ही होगा।’’6

इस तरह आदिवासियों की जुनूनी एकता एक बड़ी चुनौती बन गई। सवाल खड़ा कर दिया कि इतने साल बाद भी आदिवासी नंगे ही क्यों देखने पड़ रहे हैं? हर राजनीतिक शोषण का आदिवासियों ने डटकर मुकाबला किया। गुण्डाधुर ने राजा और अंग्रेजो के विरुद्ध संग्ठित विद्रोह किया और आदिवासी मुरिया राज की स्थापना की। जिसे अंग्रेजों ने बाद में चालाकी व कूरता से कुचल दिया।

आदिवासी समाज को हीन, पिछड़ा व कमजोर माना जाता है। उनके प्रति मुख्य समाज का दृष्टिकोण जिज्ञासापूर्ण, कोतूहल भरा होता है मानो आदिवासी कोई अजूबा हो। प्राकृतिक सम्पदा से भरपूर बस्तर का सौंदर्य बाहरी लोगों के लिए उतना आकर्षण नहीं बन पाता, वहाँ के जल प्रपात, गुफाएँ भी नहीं, उनकी नजर में नग्न अवस्था में स्वाभविक रूप से नहाती आदिवासी युवती कहीं अधिक सुन्दर है। सवाल यह है कि उन्हें बस्तर में निर्वस्त्र आदम जीवन को ही देखने की उत्कंठा क्यों? वे उस नंगेपन के यथार्थ तक क्यों नहीं पहुँच पाते।

बस्तर में कई जनजातियाँ निवास करती हैं-उनमें अलग-अलग रीतिरिवाज, संस्कार, पर्व, त्यौहार, मनाने की परम्परा है। अबूझमडिया जनजाति गोड़ो की उपजाति है। 'अबूझ' का अर्थ है 'जो न जाना जा सके' और 'माड़' का अर्थ होता है 'जंगल मुक्त ऊँची भूमि'। अबूझमाड़ घना जंगल है जहाँ सामान्य जन का प्रवेश निषिध है। यह क्षेत्र बीजापुर, नारायनपुर तथा दंतेवाडा के कुछ इलाकों तक फैला हुआ है। यहाँ सडके नहीं है। गाँव दूर-दूर तक बसे होते हैं। बाहरी दुनिया से कटे हुए। अलग-अलग आदिवासी समाज में अपनी तरह से विवाह, पर्व, त्यौहार मनाने की परम्परा है। हलवा भतरा आदि वनवासी समाजों में विवाह प्रथा में काफी समानताएँ हैं। हलवा समाज में दो तरह के विवाह प्रचलित है- सक्षिप्त और विस्तृत। पोथी-पत्रा देखने वाला पंजियार विवाह का मुहुर्त तय करता है। विस्तृत विवाह में विवाह के लिए कन्या को वर के घर पहुँचा दिया जाता है। समाज मे कोई विवाहित स्त्री या पति बनाती है तो नया पति पुराने पति को हर्जाना खर्च देता है। विधवा विवाह भी प्रचलित है। हलबा समाज में कोई कुंवारा व्यक्ति विधवा से विवाह नहीं कर सकता।

इसी भतरा समाज में चार तरह के विवाह प्रथा का चलन है। मंगनी विवाह, प्रेम विवाह, विधवा विवाह और घरजिया विवाह। भतरा समाज अविवाहित प्रेमी युगल के पवित्र प्रेम को मान्यता प्रदान करता है।

गोड जातियों में पैतु यानी कि लड़की का जबरन लड़के के घर विवाह के लिए आने का भी रोचक चलन है।

बस्तर के आदिवासियों के मध्य घोटुल की भी महत्वपूर्ण परम्परा है। घोटुल में युवक-युवतियों को भावी जीवन के बार में तैयार किया जाता है। कुछ समय के लिए सभी युवक-युवतिया घोटुल में ही निवास करते हैं। घोटुल गाँव की परिधि से बाहर बना, सामाजिक-सांस्कृतिक केन्द्र होता है। आमतोर पर घोटुल में समूहों में बैठकर प्रेमी युवक-चेलक और युवती, प्रमिकाएँ, मोटियारियों आपस में परिचित होते हैं। किस्से कहानिया गढ़ते है या सुख-दुख बाँटते हैं। यह सिलसिला तब तक चलता रहता है, जब तक कि सात-तारे या ग्वाल-झमका सिर पर नहीं आ जाते। सभा विसर्जित होती है तो कम आयु के बेलिक और मोटियारियों अलग-अलग होकर परछी में ही या बड़े से हालनुमा कमरे में जा कर सो जाते है। एक दूसरे के हो चुके या जिनका प्रेम बंधनों से मुक्त हो गया हो, ये बेलक और

मोटियारियों आधी रात के बाद अपनी- अपनी गीकी मे बन्ध जाते हैं गीकी चटाई की तरह होती है जो खजूर या ताड़ी के पत्ते से गुथकर घोटुल की मोटियारिया बड़े चाँव से अपने चेलक / प्रेमी के लिए बनाती है। इतना ही नहीं घोटुल में प्रशिक्षण भी दिया जाता है, घोटुल के सदस्य अपने हथियार फरसा, दगियाँ हसियों, कुल्हाडी, सब्बल, टोकनी, सूपण आदि अपने पास रखते हैं। घोटुल पर विदाई के गीत गाए जाते है। जिनको प्रेमी मिल जाता है वे अत्यधिक खुश होते हैं।

‘‘सिर पर डेलो डोरी डोरो।

निवेदेकंे दाकार रोय राय।

सेको निवेदेकंे काकट रोय।

बरग सरपा त,े उदीतन सिरदार

सरपार ताहे हनद,

ताने इने पाय नदी

अयो अयो इन्द,

तुत ताने ओनदी सोईदार।‘‘

मेरी सखी तेरे जाने से घर सूना हो जाएगा। ओ उस लड़की की माँ!! जो वहाँ खड़ी थोड़ा झुकी और सरमायी हुई है, अब उसे भूला दो। वह नये जीवन में प्रवेश करने जा रही है। तुमने जो शादी की रस्म के लिए चावल को पानी में डाल दिया था वह मिल गया है, इसलिए यह शादी सफल होगी।

बस्तर के आदिवासियों में दशहरा के पर्व का भी विशेष महत्व रहा है) ‘‘रियासती काल में दशहरा राजा और प्रजा के बीच एक मजबूत कड़ी थी। हर जाति और प्रकार के आदिवासी समूहों की भागीदारी किसी न किसी रूप में निश्चित की गयी है, जिस से सभी अपने आप का जुड़ाव महसूस करें इस पर्व में अन्त दान, पशुदान और श्रमदान की परम्परा विकसित की गयी जो आज भी आदिवासी समाज मे सामुदायिक भावना की बुनियाद है।’’7

दशहरा पर्व काफी दिन चलने वाला पर्व है। जिसमें बारह रस्म मनाए जाने की प्रथा है, जिनमें पाठा जाता अर्थात पाठा जात्रा पहली रस्म है। इस पर्व में राजा की विशेष भूमिका होती है। आदिवासी पर्व उनकी एकता और अखण्डता के प्रतीक होते थे। अंग्रेज भी जान चुके थे कि बस्तर के आदिवासियों की सबसे प्रतीक बड़ी शक्ति माँ दत्तेश्वरी है। यहीं ऐसासूत्र है जो इन आदिम के सभी प्रकारों और समूहों को बांधे रखती है इन्होंने इस राज्य की इस आत्मा पर प्रहार किया।

‘‘मुस्लमान और अरब सैनिकों की एक टुकडी दंतेश्वरी मंदिर में तैनात कर दी गयी। इस तैनाती ने बस्तर के राजा की विवश्ता को एक बार फिर उजागर कर दिया। मुस्लिम सैनिकों का रहन-सहन उनकी मनमानी ने भी दंतेवाडा और उसके आस-पास के क्षेत्र को महौल तनावपूर्ण कर दिया यह आदिम मान्यताओं पर सीधा और जानबूझकर हमला था।’’8

आदिवासी समाज की जीवन शैली से लेकर सामाजिक ताने-बाने तक को तोड़ने के लिए बार-बार प्रयास किए गए। बाहरी लोगों को यहां बसाया गया। सत्ता, शासन-प्रशासन, पंूजीवादी सभी चाहते थे कि आदिवासियों के विकास के नाम पर उनका शोषण किया जाता है। उनके विकास के लिए आवंटित पैसे का व्यक्तिगत विकास में उपयोग हो रहा है। बरार के आदिवासियों को इसका अहसास है-

‘‘यहाँ के निवासी जो सौ सवा सौ सालों से यहाँ निवास कर रहे हैं और जिनका बस्तर के अतिरिक्त और कोई निवास नहीं है, वे भी बस्तरिया ही है, यहीं मान्यता मिलनी चाहिए। हालात देखिए कि अपनी मातृभूमि से आदिवासी और गैर आदिवासी निष्कासित किए जा रहे हैं जबकि पश्चिमी पाकिस्तान से आ रहे शरणार्थियों को दण्डकारणय परियोजना के तहत बस्तर मे बसाया जा रहा है।’’9

अजीब बात है कि अपनी सुविधानुसार आदिवासी सदियों से अपनी अपनी जगह रहते आ रहे है। उनके अपने संस्कार, राति-रिवाज परम्पराएं व जीवन के प्रति दृष्टिकोण है। लेकिन जिनको उनके जीवन के बारे में कुछ भी नहीं पता वे उन्हंे सभ्य बनाने, शिक्षित करने व आधुनिक बनाने को उतावले है। वास्तव में उनको कोई समझने को तैयार ही नहीं है। कलेक्टर-कमिश्नर-वकील-डॉक्टर-नेता-पत्रकार जिसको देखो वहीं सीखाने लगाता है कि उनको ऐसे रहना चाहिए। ऐसा करना चाहिए बिडम्बना है अपनी परम्परा का ज्ञान भी बाहरी लोगों से ही लना पडेगा।

जितना साहस और धैर्य आदिवासियों में है जितनी सहिष्णुता और अहिंसात्मकता, ईमानदारी और प्रकृति के प्रति बफादारी बस्तर के आदिवासियों में है, उतनी किसी मानव समूदाय में शायद शेष रही हो।

बस्तर में हो रहे आदिवासी के शोषण व महिलाओं पर हुए अत्याचारों, भुखमरी में शासन की विफलता के विरोध में हजारों आदिवासी महिलाएं शांतिपूर्वक विरोध करती हैं। बिना शासन-प्रशासन के काम में रुकावट बने। - ‘‘कलेक्टर की गाड़ी बिना किसी व्यवधान के मुख्यद्वारा तक पहुंच गई। उन्होने चारों ओर नजर दोडाई तो स्तब्ध रह गए। पाँच से आठ हजार आदिवासी महिलाएं कलेक्ट्रेट के सामने शांति से बैठी हुई थी। कार्यालय का कोई मार्ग अवरूद्ध नहीं था, कोई तोड़-फोड़ नहीं, कोई नारे भी नहीं लग रह थे।’’10

लेकिन सिहांसन ने ऐसे मूक प्रदर्शनों की कब परवाह की है? हर बार की तरह आदिवासी फिर छले गए। अकाल में भूखमरी से मर रहे आदिवासियों की भी चिंता नहीं की। योजनाओं में से योजना निकाली गई और किसी योजना के साथ यह योजना जोड दी गई। फाइल में आखिरी हस्ताक्षर से टिप्पणी थी - ‘रुपया का दो पैली चावल होगा !’ कब होगा? कैसे होगा? नहीं पता। भोले-ईमानदार इंसानो को इसी तरह ठगा जाता रहा है। 14 मार्च 2004 को सुरक्षा बलों ने ताडमेटला, तिम्मापुर और मोरपले गांवों के तीन सौ घरो को जला दिया गया। वहाँ की औरतों के साथ गलत काम किया गया पुलिस ने कहा कि दे माओवादियों के कैम्प खत्म करने के लिए अभियान चला रहे हैं।

26 मार्च 1966 को बस्तर के आदिवासियों के भगवान तथा बस्तर के अंतिम राजा प्रवीर चंद की हत्या करवा दी गई। इसके उत्तररोतर आदिवासी शोषण तथा उन पर अत्याचार बढ़ते चल गए। आदिवासी भयभीत होकर घने जंगलों में लोट गए। उनका नेतृत्व समाप्त हो गया और उन्हें वर्तमान कठिन व भविष्य अंधकारमय दिखने लगा। ऐसे हालात में जब शासन-प्रशासन के नाम पर केवल शोषण हो रहा हो तो अतंतः विरोध के स्वर तो स्वाभाविक रूप से उठेगें। यह परिस्थिति नक्सलवाद के अनुकूल बन गई। बस्तर के आंध्र से लगते इलाकों में अडसठ की दौर में कुछ पर्चे बांटे गए थे। चौहतर में भोपाल पट्टनम में हुई डकैती की तीन वारदातों को बस्तर में नक्सलवाद की आरंभिक घटना कह सकते है भौपाल पट्टनम में नैशनल पार्क बनाया गया था, इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। यहीं नक्सलवाद आंध्र प्रदेश से कोडापल्ली सीतारमैया लेकर आए। 'यहाँ नक्सलवाद किसी आन्दोलन, किसी शोषण या अपने आप पैदा हुए गुस्से की वजह से नहीं आया।'11

मओवादियों ने बस्तर में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए अपनी योजनाएं आरम्भ कर दी। वे अपना स्थिर व मजबूत प्रभाव बढ़ाने के लिए तीन योजनाओं पर काम करने लगे। ''अपने प्रभाव वाले गांव की भूमि को समान आकार में बाँटना। वन भूमि को साफ करना और उसे बाँटना तथा आदिवासियों को शस्त्र की उस ताकत का अहसास कराना जिस से प्रशासन भी खौफ खाता है इस तरह माओवादी काफी हद तक अपनी योजना में सफल हो गए। अपना प्रभाव जमाने के लिए सरकारी कर्मचारीयों में ठेकेदारों की हत्या की जाने लगी। इनमें कई संदेश छिपे है। पहला व्यवस्था से लड़ा जा सकता है। बस्तर में ठेकेदार और सिपाही आदिवासियों के शोषण के प्रतीक है, इसलिए निशाना बनाए जा रहे है और तीसरा हक दिलाने के नाम पर बस्तर में संगठन खड़ा किया जा रहा है।''12

इस हालात ने बस्तर में अनेक आदिवासियों को हथियार के रूप में उपयोग किया गया। अनेक डाकू और गुरिल्ला तैयार किए। उपन्यास का पात्र मरकाम भी इन्ही परिस्थितियों के कारण नक्सलवादी बन गया। प्रशासन लगातार निरर्थक साबित होता रहा और माओवादी अपनी जड़े जमाते रहे। इन दोनों के बीच आदिवासी पीसते रहे। जनवरी 1996 में पीपुल्स वार ग्रुप द्वारा दण्डकारण्य स्पेशल जोन कमिटी का गठन किया गया। जिसका उदेश्य आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र , मध्यप्रदेश के कुछ क्षेत्रों को मिलाकर एक बड़ा लिब्रेटिड जोन बनाना था। माओवादियों ने आदिवासियो की सामाजिक संरचना को बिगाड़ दिया। उनका सहज जीवन कठिन होने लगा। धीरे धीरे आदिवासियों में माओवादियों का विरोध होने लगा। आरम्भ में यह सामुदायिक पुलिसिया पद्धति पर आधारित सुरक्षात्मक ढांचे के रूप में पनपा। जिसकी सरकार सलवा जुडुम ने के नाम सहायता भी की।

इस दौरान आदिवासियों का शोषण समाप्त नहीं हुआ। नए-नए उधोग लगाए गए उन्हें उद्योगों के प्रदूषण के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। बस्तर में गैर सरकारी संगठनों, मानवाधिकार कार्यकताओं की फौज तैयार हो गई। लेकिन सब अपने स्वार्थ में डूबे हुए माओवाद सरकार की विफलता का परिणाम है। जनताति समुदाय अगर माओवादियों के साथ है तो इसका कारण यह है कि उग्र वामपंथ ने जनजातियों को लाम्बन्ध कर उन्हें राजनीतिक नेतृत्व प्रदान किया तथा वे जनजातियों को लड़ने के लिए सक्षमता देते हैं। अपनी कमियों व तथाकथित अपराधों

के लिए उग्र वामपंथ संगठन को दोषी करार दिया जा सकता है, लेकिन कम से कम इन बातों के लिए तो उनका सम्मान किया जा सकता है कि उन्होंने आदिवासियों को आवाज दी तथा अन्याय के खिलाफ लड़ने का हौसला दिया है।13

शासन आदिवासियों की समस्याओं को हल करने में नाकामयाब रहा है। माओवाद, नक्सलवाद, उग्रवाद उसी असफलता का परिणाम है। आदिवासी समस्या उसकी चिंता का विषय नहीं रही।''यह पूजीवादी राष्ट्रवाद है जिसे आदिवासी एक रुकावट की तरह प्रतीत होते हैं। इसलिए इस राष्ट्र को इस बात का कोई र्दद नहीं है कि आदिवासियों के समुदाय का अस्तित्व समाप्त हो रहा है। वे हिरण की कुछ दुलर्भ प्रजातियों, शेरों और बाघों की प्रजातियों की चिंता करेंगे। लेकिन इस देश के मूल निवासियों को बचाने की चिंता उसे नहीं है।''14

इस तरह के आक्रमण के कारण आदिवासी समाज का विघटन हो रहा है। वे संकट के दौर से गुजर रहे हैं। उनका समाज टूट रही है। सदियों से कायम पराह-पंचायते टूट रही हैं। आदिवासी समाज के प्रशिक्षण केन्द्र घोटुल जैसी सांस्कृतिक स्तम्भ टूट रहे हैं। उनके धर्म संस्कृति, भाषा व आर्थिक ढांचे पर बाहरी समाज का गहरा दुष्प्रभाव पड़ा है। नये समाज की रचना के उद्देश्य से माओवादियों ने आदिवासियों को उनके पत्रक निवास और जीवन शैल से भी खदेड़ दिया है। उनकी खून-पसीने से कमाई सम्पति को बराबरी के तर्क के लिए बॉट दी गयी है। सास्कृतिक व धार्मिक आकमणी से आर्थिक शोषण व नेतृत्व की चालों से उनकी परम्परागत जीवन शैली का अस्तित्व संकट में है। उनको हथियार उठाने या मृत्यु का सामना करने के संकट से गुजरना पड़ रहा है।

इस राष्ट्र से आदिवासी क्या चाहते हैं? आदिवासी चाहते है उनको उनके इलाके में उनके तरीके से रहने दिया जाय। अगर राष्ट्र कुछ लेता है तो उनको भी राष्ट्र की दौलत में न्यायोचित हिस्सा मिलना चाहिए। लेकिन राष्ट्रीय नेतृत्व उनकी आवाज सुनने को तैयार नहीं है इन सब के चलते वे जंगल के भीतर मौत और हथियार में से एक का चुनाव करने को मजबूर हो रहे हैं।

उपन्यासकार निराश नहीं है, उन्हें भरोसा है कि पिछडे समाज में भी जागृति आएगी तथा उनकी हालत में सुधार होगा। इसके लिए आदिवासियों को फिर से उनकी जड़ों से जोड़ना होगा। उनकी पंचायतों को उनके पुराने स्वरूप में फिर से जीवित करना होगा घोटुलों को पुनः सक्रिय करने की जरूरत है, जिनका आदिवासी संस्कृति एवं आदिवासी एकता में अमूल्य योगदान रहा है। आदिवासियों के धार्मिक विश्वास उनकी ताकत है जिनके माध्यम से उनके बिखराव को फिर से जोड़ा जा सकता है। बस्तर की हस्थ- कला एवं लोक कलाएँ समृद्ध है, पाषाण कला, मृतिका कलाओं को भी उचित बाजार उपलब्ध कराने की जरूरत है। न्याय व्यवस्था और पुलिस-प्रशासन को सरल बनाने की आवश्यकता है। इतना ही नहीं उनको वाद, नक्सलवाद के चंगुल से बचाने की जरूरत है।

संदर्भः-

1. भारतीय संस्कृति कोश, सं0 महादेव शास्त्री जोशी, खण्ड-1, भारतीय संस्कृति कोस मण्डल, पुणे, 1962 ई0. पृ0 - 428.

2. आमचो बस्तर (भूमिका - रमेश नैयर), राजीव रंजन प्रसाद, यश पब्लिकेशन, दिल्ली -2012. ई0. - पृ0 -08.
3. वही - पृ0 - 21.
4. वही - पृ0 - 25.
5. मध्य प्रांत और बरार में आदिवासी समस्याएँ, डबल्यू व ग्रिग्सन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 2008 ई0. - पृ0 - 376.
6. आमचो बस्तर राजीव रंजन प्रसाद, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012 ई0 पृ0 - 25
7. वही - पृ0 - 365.
8. वही - पृ0 - 124.
9. वही - पृ० - 386.
10. वही - पृ० - 390.
11. वही - पृ० - 68.
12. वही - पृ० - 67.
13. बहुवचन. स0 अशोक मिश्रा. (त्रैमासिक पत्रिका) वर्धा, जनवरी-मार्च-2011-पृ0 14.
14. इस्पालिका, स0-ए0 के0 सिंह, जम्सेदपुर, (झारखण्ड़) जनवरी-जून- 2012 पृ0-42.